9
सही परिप्रेक्ष्य में स्त्री की भूमिका

कुछ समाजों में स्त्रियों के मुद्दों के भावनात्मक होने के कारण बाइबली दृष्टिकोण को परिप्रेक्ष्य में रखना कठिन है। बेशक स्त्रियों को ''निर्बल पात्र'' (1 पतरस 3:7) कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि उनमें उस शक्ति की कमी है, जो पुरुषों में पाई जाती है पर वह किसी भी तरह से पुरुषों से कम नहीं मानी जाती। पतरस ने यह बात स्त्रियों का अपमान करने के उद्देश्य से नहीं लिखी, बल्कि वह उनकी ओर से बोल रहा था। उसने पतियों को अपनी पत्नियों का लिहाज करने के लिए कहा न कि उनके साथ दुर्व्यवहार करने या शारीरिक बल का इस्तेमाल।

भिन्नताएं

स्त्रियों को ''निर्बल'' पात्र संस्कृति नहीं बनाती है। यह एक शारीरिक अन्तर है, जो आदम और हव्वा को बनाते समय परमेश्वर ने ठहराया था। परमेश्वर ने पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग-अलग योजनाएं बनाईं, जिस कारण उसने उनमें ऐसी भिन्नताएं रखीं, जो उनकी ठहराई हुई भूमिकाओं को पूरा करने में सहायक हो सकती थीं। समाज इन भूमिकाओं को बदलने की कोशिश कर सकता है; परन्तु पुरुषों और स्त्रियों की शारीरिक बनावट के कारण कुछ भूमिकाएं केवल स्त्रियों के लिए हैं और कुछ केवल पुरुषों के लिए। कुछ काम पुरुषों के लिए अधिक उपयुक्त हैं जबकि कुछ स्त्रियों के लिए अधिक उपयुक्त हैं और कुछ काम ऐसे हैं, जिन्हें पुरुष और स्त्रियां दोनों मिलकर कर सकते हैं। परमेश्वर ने पुरुषों और स्त्रियों को अलग बनाया ताकि वे अलग-अलग तरह से काम कर सकें और वे अपनी-अपनी भूमिकाएं निभा सकें।

स्थितियों और भिन्नताओं का होना आवश्यक नहीं कि श्रेष्ठता या हीनता का संकेत हो। सरकारी अधिकारियों की अधीनता मानने वाले नागरिक (रोमियों 13:1-5; 1 पतरस 2:13), अपने मालिकों की आज्ञा मानने वाले दास (तीतुस 2:9), अपने अगुओं की अधीनता मानने वाले कलीसिया के लोग (इब्रानियों 13:17) और अपने माता-पिता की आज्ञा मानने वाले बच्चे (इफिसियों 6:1) अपने ऊपर अधिकार रखने वालों से अधिक योग्य और समझदार हो सकते हैं। कुछ तरह से समान परन्तु दूसरी तरह से अलग होना ही मानवीय सम्बन्धों के बारे में बाइबल का विषय है।

आज्ञा देने से भी कठिन आज्ञा मानना हो सकता है, क्योंकि जो अधीन होता है, उसके लिए आज्ञा देने वाले से अधिक आत्म-नियन्त्रण होना आवश्यक है। अधीन होना अपनी इच्छा को काबू में रखना है, जिससे किसी दूसरे की बात को मानने के लिए तैयार हों, जिसमें हो सकता है कि उतनी योग्यता, कुशलता, समझ या गुण न हो।

मसीह में सब एक

जो लोग यह दावा करते हैं कि मसीही की देह के अंगों के रूप में पुरुषों के अधीन होना स्त्रियों की ज़िम्मेदारी नहीं है, उन्हें गलातियों 3:28 में आश्रय का बुर्ज मिलता है: ''अब न कोई यहूदी रहा और न यूनानी; न कोई दास, न स्वतन्त्र; न कोई नर, न नारी; क्योंकि तुम सब मसीह यीशु में एक हो।'' कुछ लोग इसका अर्थ यह निकालते हैं कि हर मसीही की एक जैसी आत्मिक भूमिकाएं हैं।

हर मसीही को एक जैसे आत्मिक दान नहीं मिले थे, क्योंकि वे आत्मा की इच्छा के अनुसार हर किसी को अलग-अलग दिए गए थे (1 कुरिन्थियों 12:11)। पौलुस ने कहा कि सबको एक ही देह में बपतिस्मा दिया जाता है, ''क्या यहूदी हो, क्या यूनानी, क्या दास, क्या स्वतंत्र'' (1 कुरिन्थियों 12:13क)। इस विचार को वह मानवीय देह का इस्तेमाल करते हुए आगे समझाने लगा। शरीर में कई अंग होते हैं और उन अंगों के अलग-अलग काम होते हैं वैसे ही मसीह की देह है (1 कुरिन्थियों 12:15-22)। पौलुस ने कहा, ''क्या सब प्रेरित हैं? क्या सब भविष्यवक्ता हैं? क्या सब उपदेशक हैं? क्या सब सामर्थ के काम करने वाले हैं?'' (1 कुरिन्थियों 12:29)। मसीह में होने का अर्थ यह नहीं है कि सबकी एक ही ज़िम्मेदारी या अधिकार है।

प्रेरितों के पास कलीसिया में अधिकार की स्थिति थी (1 थिस्सलुनीकियों 2:6), बेशक, सब मसीही एक हैं। एक होने का अर्थ यह नहीं था कि कलीसिया में हर किसी के पास प्रेरितों जैसा अधिकार था। दास के ऊपर स्वामी का अधिकार बना रहा (तीतुस 2:9), बेशक, दोनों ही प्रभु में थे। पुरुषों और स्त्रियों को एक समान अपने अगुओं के अधीन रहना था (इब्रानियों 13:17)। पत्नियों को अपने पतियों के अधीन रहना था (इफिसियों 5:24) और पत्नियों को मण्डलियों में अगुवों के अधीन रहना था (1 तीमुथियुस 2:11)। मसीह में एक होने का अर्थ यह नहीं है कि सबको एक जैसा अधिकार मिल गया है।

किसी स्वामी के मन में चलने वाले संघर्ष की कल्पना करें, जो एल्डर के पद के योग्य नहीं था, यदि उसे अपने दास के अधीन होना हो, जिसमें एल्डर बनने की योग्यता थी और वह बन गया। ऐसे सम्बन्ध में स्वामी का अधीनता मान लेना, मसले का हल होगा। निश्चय ही इसके लिए उनके आत्मिक सम्बन्धों के बाहर की परिस्थितियां अलग होने पर स्वामी का बड़ा दिल होना आवश्यक है। कई स्त्रियों को ऐसे ही संघर्ष का सामना करना पड़ता है क्योंकि उनमें उनसे अधिक योग्ताएं होती हैं, जिनके अधीन उन्हें होना है। वे विनम्रतापूर्वक अधीनता मानकर परमेश्वर की इच्छा के प्रति सम्मान और अपनी महानता दिखा सकती हैं। हर मसीही के लिए चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, परमेश्वर के प्रबन्ध को मानना आवश्यक है।

जो लोग स्त्रियों को नेतृत्व की भूमिका देना चाहते हैं, उनको यह समझना चाहिए कि यदि स्त्री को अधिकार का पद दिया जाता है तो किसी को उनके अधीन होना पड़ेगा। वह कौन होगा? क्या केवल बच्चे? क्या स्त्रियां ही होंगी और पुरुष उसमें नहीं होंगे। यदि कुछ स्त्रियों को अधिकार दिया जाता है तो दूसरी स्त्रियां फिर भी अधीन रहेंगी। हर कोई इंचार्ज नहीं बन सकता। कुछ लोगों के इंचार्ज बनकर और दूसरों के उन्हें अगुओं के रूप में माने बिना कोई समूह मिलकर काम नहीं कर सकता (इब्रानियों 13:17)। बेशक, हम सब मसीह में एक हैं, पर हम सबको एक ही भूमिका नहीं दी जा सकती। पौलुस ने इस विचार को नकार दिया कि एक होने का अर्थ मसीह में एक ही भूमिका या स्थिति का होना है (1 कुरिन्थियों 12:4-31, देखें रोमियों 12:6-8; इफिसियों 4:11-13)।

गलातियों 3:28 में पौलुस क्या कह रहा था? वह केवल इतना कह रहा था कि जिन्होंने मसीह में बपतिस्मा लिया है, वे परमेश्वर की संतान बनकर उसी देह में प्रवेश करते हैं। बपतिस्मा किसी को यहूदी कलीसिया और किसी दूसरे को अन्यजाति कलीसिया का सदस्य, किसी को तो दास कलीसिया का और किसी दूसरे को स्वन्त्रत कलीसिया का सदस्य या किसी को पुरुष कलीसिया का सदस्य और किसी दूसरे को महिला कलीसिया का सदस्य नहीं बनाता। बपतिस्मा हम सबको ''एक'' बनाता है यानी सब सदस्यों को एक ही देह के अंग (गलातियों 3:27; रोमियों 12:4, 5; कुलुस्सियों 3:11)।

मसीह में हमारी भिन्नताओं के चिह्न वैसे ही रहते हैं: पुरुष और स्त्रियां अभी भी नर और नारी ही हैं; दास और स्वामी अभी भी गुलाम और मालिक ही हैं; यहूदी और अन्यजाति अभी भी यहूदी और अन्यजाति ही हैं। इन सब भिन्नताओं के साथ रहने के बावजूद परमेश्वर मसीह में सब लोगों को एक जैसा प्रेम करता है; वह अपने प्रेम में पक्षपता नहीं करता (रोमियों 2:6-11)। बिल्कुल वैसे ही जैसे अच्छे माता-पिता परिवार में हर बच्चे से एक जैसा प्रेम रखते हैं पर उन्हें ज़िम्मेदारियां अलग-अलग देते हैं, वैसे ही परमेश्वर अपने आत्मिक परिवार के लोगों के साथ करता है। इस तथ्य का कि हम सब मसीह में एक है अर्थ यह नहीं है कि हमारी योग्यताएं बदल गई हैं या हमारी भूमिकाएं बदल गई हैं। मसीह में होने का अर्थ यह नहीं है कि हम सबको परमेश्वर की संतान के रूप में ग्रहण किया गया है, हम एक होकर इकट्ठे बन्ध गए हैं, स्थिति में अन्तर होने बावजूद एक हो सकते हैं और परमेश्वर के साथ एक ही सम्बन्ध रख सकते हैं।

अधीनता

अधीन होने में क्या बुराई है? यीशु ने हमें अधीनता के महत्व का एक नमूना दिया है। यीशु ने अपने विशेषाधिकारों को एक ओर रखकर अपने आपको इतना दीन किया कि जिससे वह पिता का आज्ञाकारी बन सका (फिलिप्पियों 2:7, 8)। अपने ऊपर अधिकार वालों के प्रति हमारा व्यवहार भी मसीह वाला ही होना चाहिए (फिलिप्पियों 2:5)। अपनी अधीनता के कारण यीशु ने महानता में प्रवेश किया (फिलिप्पियों 2:9-11)। यदि हम अधीन होंगे तो हम भी वैसा ही कर सकते हैं।

कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि कई स्त्रियों की योग्यताओं को बेकार कर दिया जाता है क्योंकि उन्हें नेतृत्व की भूमिकाएं नहीं दी जातीं। यदि स्त्रियों के गुणों को बेकार किया जाता है तो यह नेतृत्व की गलती है। अच्छे अगुवे अपनी निगरानी में हर सदस्य की समझ और क्षमता का सही-सही इस्तेमाल करेंगे। सब अच्छे विचार पुरुषों से ही नहीं मिलते। चतुर अगुवे मण्डली के भीतर हर सदस्य की क्षमता का पता लगाएंगे।

स्त्रियों को पुरुषों वाले सब अधिकार और आशिषें प्राप्त हैं, सिवाय इसके कि उन्हें कलीसिया पर अधिकार करने और इसे चलाने या पवित्र लोगों की सभा को सम्बोधित करने का अधिकार नहीं है। यह मण्डली के पुरुषों की ज़िम्मेदारी है। उन्हें परमेश्वर की इच्छा को मानकर और मण्डली के अगुओं के रूप में पुरुषों से सहयोग करके अपनी महानता को दिखाना चाहिए।

संस्कृति या आज्ञा?

एक महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है, परन्तु उस पर फिर से विचार किया जाना आवश्यक हो सकता है: ''क्या बाइबल में दिखाई गई स्त्री की भूमिका केवल सांस्कृतिक भूमिका है या यह परमेश्वर की योजना के अनुसार भूमिका है?''

बाइबल में बताए गए पति/पत्नी सम्बन्ध (इफिसियों 5:23, 24; कुलुस्सियों 3:18) और कलीसिया में स्त्री की भूमिका (1 कुरिन्थियों 14:34) का प्रबन्ध परमेश्वर की ओर से किया गया था न कि ये सांस्कृतिक बातें ही थीं। पुरुष को स्त्री पर अदन की वाटिका में उसके पाप के कारण अधिकार दिया गया था (उत्पत्ति 3:16)। पौलुस ने सिखाया कि परमेश्वर के उस प्रबन्ध के आधार पर जब उसने पुरुष और स्त्री को बनाया था (1 कुरिन्थियों 11:9; 1 तीमुथियुस 2:13) और इसलिए कि आदम नहीं, बल्कि हव्वा भरमाई गई थी (1 तीमुथियुस 2:14) स्त्रियों को चाहिए कि वे पुरुषों का सम्मान करें और अपने सिर के रूप में उनके अधीन हों। उसने यह भी कहा कि स्त्री की ओर से अधीनता व्यवस्था की शिक्षा से मेल खाती है और यीशु की आज्ञा है (1 कुरिन्थियों 14:34, 37)। पतरस ने इसे परमेश्वर की इच्छा को पूरी करने वाले बाइबल के सम्मानित नायकों द्वारा ठहराई गई मिसाल के रूप में पेश किया (1 पतरस 3:5, 6)।

पति/पत्नी की भूमिका या कलीसिया में स्त्री की भूमिका से जुड़ी किसी संस्कृति के आधार पर बाइबल कोई निष्कर्ष नहीं निकालती। स्त्री की भूमिका परमेश्वर की योजना और परिकल्पना से ठहराई गई है, न कि समाज की बदलती रहने वाली रीतियों से। इस प्रश्न पर बाइबल की सब बातें सीधी आज्ञाओं के आधार पर, परमेश्वर की सृजनात्मक योजनाओं के आकर्षणों या अदन की वाटिका में किए गए पाप के दण्ड के कारण। परमेश्वर ने इस पर अपनी इच्छा के अनुसार काम किया। स्त्रियां या तो आशिषों काट सकती हैं क्योंकि वे परमेश्वर के प्रबन्ध का सम्मान करती हैं या फिर उसकी इच्छा को न मानने के कारण विपरीत परिणाम भुगत सकती हैं। पसन्द आपकी है।

संस्कृति को बीच में डालकर यीशु की शिक्षा में सुधार करने वाले लोग यीशु के

अनुयायियों पर उसकी आज्ञाओं के बजाय मनुष्य की परम्पराएं थोपने की कोशिश कर रहे हैं। यीशु के चेलों को संसार की परम्परा को मानने के बजाय यीशु की सब आज्ञाओं का मानना आवश्यक है (मत्ती 28:20): ''और इस संसार के सदृश न बनो; परन्तु तुम्हारी बुद्धि के नए हो जाने से तुम्हारा चाल-चलन भी बदलता जाए, जिस से तुम परमेश्वर की भली, और भावती, और सिद्ध इच्छा अनुभव से मालूम करते रहो'' (रोमियों 12:2)। यदि हम धार्मिक, नैतिक और आत्मिक मामलों में अगुआई के लिए संस्कृति की ओर देख रहे हैं तो हम गलत दिशा में देख रहे हैं। हमें ''विश्वास के कर्त्ता और सिद्ध करने वाले यीशु'' (इब्रानियों 12:2) की ओर देखना चाहिए।

ऐसे मामलों में प्रश्न ''सांस्कृतिक रूप से क्या माना जाता है?'' नहीं, बल्कि ''परमेश्वर की इच्छा क्या है?'' होना चाहिए। जब हम स्थिति का अवलोकन इस तरह से करते हैं तो हम वैसे देख सकते हैं, जैसे परमेश्वर देखता है और हमें पता चल सकता है कि यीशु मसीह के सेवक के रूप में स्त्री के लिए हमारा सही परिप्रेक्ष्य है।

सारांश

इस जीवन में हो सकता है कि हमें परमेश्वर की योजनाओं और उद्देश्यों को समझना कठिन हो, हो सकता है कि हम यह कभी न समझ पाए कि परमेश्वर ने पुरुषों और स्त्रियों को ऐसा क्यों बनाया या यह कि उसने उनके लिए ऐसी भूमिकाएं क्यों ठहराईं। हमें उस सबको समझने की आवश्यकता नहीं है, जो परमेश्वर ने आज्ञा देते समय अपने मन में रखी। हमें तो केवल परमेश्वर में विश्वास रखना आवश्यक है, जिसने आज्ञा दी और मन से उसके अधीन होना है।

हमारे लिए सबसे बड़ी बात परमेश्वर के नमूने का सम्मान करना और उसकी आज्ञाओं का पालन करना है। हमारा न्याय हमारी इस समझ से नहीं होगा कि परमेश्वर ने फलां-फलां आज्ञाएं क्यों दीं, बल्कि हमारे उसकी आज्ञा मानने के आधार पर होगा (मत्ती 16:27; रोमियों 2:6; 1 पतरस 1:17)। इस मामले में और सब मामलों में हमें परमेश्वर की इच्छा को मानने में यीशु का स्वभाव रखना चाहिए: ''... तौभी जैसा मैं चाहता हूं वैसा नहीं, परन्तु जैसा तू चाहता है वैसा ही हो'' (मत्ती 26:39ख; फिलिप्पियों 2:5)।